बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 28

आखिरकार, लोकपाल

संसद में पहली बार प्रस्ताव लाए जाने के 56 साल और लोकपाल कानून बनने के लिए राष्ट्रपति की मंजूरी मिलने के 5 साल बाद जाकर देश को पहला लोकपाल मिलने जा रहा है। राजग सरकार ने देश के पहले लोकपाल की नियुक्ति प्रक्रिया पूरी कर ली है। उच्च पदों पर भ्रष्टाचार के खिलाफ संघर्ष में इस कदम को मील का पत्थर माना जाना चाहिए। लेकिन वर्ष 2014 के चुनाव में भ्रष्टाचार के खिलाफ मुहिम का वादा कर सत्ता में आने वाली सरकार के कार्यकाल के एकदम अंत में लोकपाल की नियुक्ति होना काफी अजीब है। इस विलंब का यह कारण बताया जाता रहा कि लोकपाल चयन समिति में विपक्ष के एक सदस्य की भी उपस्थिति अनिवार्य है लेकिन इसके लिए जरूरी 10 फीसदी सीटें किसी भी विपक्षी दल को नहीं मिली थीं। हालांकि सरकार सीबीआई अधिनियम को भी नजीर के तौर पर देख सकती थी जिसमें जांच एजेंसी के प्रमुख का चयन करने वाली समिति में बड़े विपक्षी दल के नेता को आमंत्रित करने का प्रावधान है। सबसे बड़े विपक्षी दल कांग्रेस के नेता को लोकपाल चयन समिति की बैठक में विशेष आमंत्रित सदस्य के तौर पर बुलाने से गतिरोध दूर नहीं हुआ क्योंकि उसे निर्णय-निर्माण में कोई शक्ति नहीं दी गई थी। शायद इसीलिए कांग्रेस के नेता मल्लिकार्जुन खड़गे ने बैठक से बाहर रहना ही ठीक समझा। यह फैसला नई सरकार के आते ही कई समस्याएं पैदा कर सकता है।

बहरहाल लोकपाल के रूप में न्यायमूर्ति पी सी घोष का चयन एक निरपवाद पसंद है। उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश रहते समय न्यायमूर्ति घोष ने सभी दलों के नेताओं से संबंधित मामलों में निष्पक्ष निर्णय सुनाए थे। न्यायमूर्ति घोष उस पीठ में शामिल थे जिसने जयललिता और उनकी सहयोगी शशिकला को सार्वजनिक पद का दुरुपयोग कर धन जमा करने का दोषी ठहराया था। वह उस पीठ में भी शामिल थे जिसने बाबरी मस्जिद विध्वंस मामले में भाजपा के कई दिग्गज नेताओं के खिलाफ आरोप तय करने का निर्देश दिया था।

हालांकि लोकपाल से संबंधित दो अहम मुद्दे सामने आ रहे हैं। पहला, नियुक्त करने वाले सदस्य भी उसी तरह नियुक्त किए जाएंगे जिस प्रक्रिया के तहत लोकपाल नियुक्त किया जाएगा। कानून में अधिकतम 8 सदस्य नियुक्त करने का प्रावधान है जिनमें से आधे सदस्य न्यायिक पृष्ठभूमि से होने चाहिए। बाकी सदस्य अनूसूचित जाति-जनजाति, अन्य पिछड़ी जाति, अल्पसंख्यक और महिला वर्ग से होने चाहिए। अगर ये शर्तें चुनौतीपूर्ण हैं तो इससे मुश्किल और बढ़ जाती है कि इन सदस्यों के बारे में सुझाव देने वाली समिति के लिए भी समान नियम-शर्तें लागू होंगी। ऐसे पदों की विवादास्पद प्रकृति और लोकसभा चुनावों से उथल-पुथल की आशंका के चलते इसकी संभावना कम ही है कि लोकपाल फिलहाल काम शुरू कर पाएगा। दूसरी चुनौती संस्थागत स्वतंत्रता से जुड़ी हुई है। शीर्ष अदालत से लेकर चुनाव आयोग तक सबके लिए मौजूदा सरकार समेत ज्यादातर सरकारों का नजरिया बहुत आदर वाला नहीं रहा है। सीबीआई को पहले ही 'पिंजरे में कैद तोता' कहा जाता रहा है।

लोकपाल और इसके सदस्यों का नैतिक प्राधिकार सबसे अधिक मायने रखता है। मसलन, लोकपाल कानून में प्रधानमंत्री सहित सहित अधिकतर सरकारी अधिकारी शामिल हैं। लेकिन इस कानून में प्रधानमंत्री के उन कार्यों को जांच के दायरे में न रखना भी विवाद का विषय है जो अंतरराष्ट्रीय संबंध, बाहरी एवं आंतरिक सुरक्षा, लोक व्यवस्था, परमाणु ऊर्जा और अंतरिक्ष से जुड़े हों। इनकी व्याख्या व्यापक या सीमित हो सकती है और यह पूरी तरह से लोकपाल की इच्छा पर निर्भर करेगा। वैश्विक अर्थव्यवस्था में भारत की बढ़ती भागीदारी को देखते हुए लोकपाल को एक उच्च मानक स्थापित करना चाहिए और राजनीतिक दबाव से स्वतंत्र रहते हुए एक ऐसे संस्थान के तौर पर अपनी पहचान स्थापित करनी होगी जो सबके सम्मान का विषय हो।

बिनय सिन्हा

जल प्रबंधन का अनूठा चीनी तरीका

चीन का नदी संरक्षण कार्यक्रम भारत में नदियों को प्रदूषण-मुक्त करने के लिए एक मिसाल बन सकता है। हालांकि इसके लिए राजनीतिक इच्छाशक्ति को जरूरी बता रहे हैं **विनायक चटर्जी**

चीन में जल प्रबंधन को लेकर लंबे समय से यह कहा जाता रहा है कि 'पानी को नौ ड्रैगन संभालते हैं'। यह कोई सराहना न होकर एक उपमा है जिसका मतलब है कि चीन के जल संसाधनों को संभालने में जुटी एजेंसियों के दायित्व एवं जिम्मेदारियां एक-दूसरे का आच्छादन करती हैं। आश्चर्यजनक रूप से यह उपमा भारत के जल प्रबंधन के बारे में भी काफी सही है। दोनों ही देशों में जल प्रबंधन केंद्र एवं राज्यों के स्तर पर मंत्रालयों और जल प्रबंधन एवं जल प्रदूषण से जुड़ी विभिन्न एजेंसियों में बंटा हुआ है।

जल प्रबंधन की जटिल एवं अस्पष्ट व्यवस्था होने के अलावा तीव्र विकास और पानी के बेलगाम होते इस्तेमाल का नतीजा यह हुआ है कि चीन के सतही जल का एक-तिहाई हिस्सा पीने के लायक नहीं रह गया है (स्रोत: ग्रीनपीस रिपोर्ट)। इस हालात का मुकाबला करने के लिए चीन ने पिछले साल एक गैर-परंपरागत लेकिन महत्त्वाकांक्षी कार्यक्रम 'रिवर चीफ्स' शुरू किया था।

इस कार्यक्रम में एक सरकारी अधिकारी को 'नदी का मुखिया' (रिवर चीफ) नियुक्त किया जाता है जो अपने इलाके में मौजूद जलाशय या नदी के खास हिस्से में पानी की गुणवत्ता संकेतकों का प्रबंधन करता है। उनका प्रदर्शन और भावी करियर इस बात पर निर्भर करता है कि उन्होंने अपने कार्यकाल में जल गुणवत्ता संकेतकों को सुधारने में कितनी कामयाबी हासिल की है। स्थानीय समाचारपत्र चाइना डेली में पिछले साल प्रकाशित एक रिपोर्ट के मुताबिक पूरे चीन में नदियों एवं जलाशयों की गुणवत्ता पर नजर रखने के लिए 4 लाख से अधिक रिवर चीफ नियुक्त किए गए। इनके अलावा ग्रामीण स्तर पर 7.6 लाख और लोगों को नदियों की देखरेख का जिम्मा दिया गया। इस तरह समूचे चीन में नदियों के पानी की हालत सुधारने के काम में 10 लाख से अधिक लोग लगाए गए।

चीन में जल संरक्षण के काम में लगे संगठन 'चाइना वाटर रिस्क' के मुताबिक, रिवर चीफ कार्यक्रम का हिस्सा बनने का मतलब है कि 'स्थानीय अधिकारियों को अपने-अपने क्षेत्र में दिखाए गए पर्यावरणीय प्रदर्शन के लिए आजीवन जवाबदेही का सामना करना पड़ेगा'। नदी के जिस हिस्से के लिए उस अधिकारी को नियुक्त किया गया है वहां पर उसके नाम के साथ संपर्क ब्योरा भी अंकित होता है। अगर स्थानीय लोग किसी व्यक्ति या कंपनी को उस नदी खंड में कूड़ा-करकट डालते हुए देख लेते हैं या वहां पर काई जम रही है तो वे उस अधिकारी को फोन पर इसकी जानकारी देते हैं। नदी के अहम एवं बड़े हिस्से का दायित्व अधिक वरिष्ठ अधिकारी को दिया गया है। इससे अधिकारी तमाम विभागों को एक साथ काम करने के लिए जोड़ सकता है।

रिवर चीफ प्रणाली की शुरुआत सबसे पहले वर्ष 2007 में च्यांग्सु प्रांत के स्थानीय अधिकारियों ने की थी। उस समय एक जल-क्षेत्र में फैल रही काई से निजात पाने के लिए एक स्थानीय अधिकारी को दायित्व सौंपा गया था। 'साउथ चाइना मॉर्निंग पोस्ट' समाचारपत्र के मुताबिक, जल-क्षेत्र को काई से आजाद कराने के बाद समूचे प्रांत में रिवर चीफ व्यवस्था लागू कर दी गई थी जिससे पानी की गुणवत्ता में खासा सुधार देखा गया था। हालत यह हो गई कि च्यांग्सु में इंसानों के पीने लायक सतही जल का अनुपात 35 फीसदी से बढ़कर 63 फीसदी हो गया।

भारत में इस तरह की व्यवस्था क्या कारगर हो पाएगी? हमारी समस्याएं भी काफी हद तक ऐसी ही हैं। पानी में प्रदूषण की अधिकता के अलावा जल प्रबंधन से जुड़े कार्यों का जिम्मा कई संगठनों एवं सरकारी विभागों को सौंपा गया है। भारत में प्रदूषण से निपटने के लिए पहले से ही कानून लागू होने के अलावा केंद्र एवं राज्य दोनों स्तरों पर प्रदूषण मानकों के क्रियान्वयन के लिए प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड बने हुए हैं।

चीन के संदर्भ में खास बात यह है कि प्रदूषण के नियंत्रण से संबंधित तमाम जिम्मेदारियां स्थानीय स्तर के अधिकारी को दे दी गई हैं और विभिन्न सरकारी विभागों को प्रदूषण नियंत्रण से संबंधित आदेश देने की शक्ति भी उसके पास ही होती है। इस तरह स्थानीय निवासियों को सिद्धांत रूप में पता होता है कि हालत न सुधरने पर किसकी गरदन पकड़नी है। पर्यावरण के मोर्चे पर दिखाए गए प्रदर्शन को अधिकारियों के लक्ष्यों एवं आकलन का अहम हिस्सा बनाया गया है जिससे वे इन चुनौतियों से निपटने के लिए गंभीर प्रयास करते हैं। जल गुणवत्ता सुधार के लक्ष्य स्पष्टत: तय किए जाने के साथ उनकी निगरानी भी स्वतंत्र रूप से की जा सकती है।

हालांकि चीन में रिवर चीफ कार्यक्रम के वास्तविक नतीजों के बारे में कुछ बता पाना संभव नहीं है क्योंकि वहां पर इसे राष्ट्रीय स्तर पर पिछले साल ही लागू किया गया है। फिर भी पहले से संचालित कुछ इलाकों में पानी की गुणवत्ता में सुधार देखा गया है, लेकिन कई इलाकों में हालात जस-के-तस बने हुए हैं या फिर बदतर भी हुआ है। अगर नदी में प्रदूषक कचरा गिराने वाले कारखानों पर जुर्माना लगाने की शक्ति रिवर चीफ के पास नहीं है तो फिर उसे पानी के गुणवत्ता स्तर में सुधार का लक्ष्य देने का कोई मतलब नहीं है।

भारत में राज्यों के स्तर पर गठित प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के पास तो जुर्माना लगाने की शक्ति पहले से ही है। दरअसल राज्यों में शीर्ष स्तर पर राजनीतिक इच्छाशक्ति होना ज्यादा जरूरी है। आखिर किसी भी योजना के जमीनी क्रियान्वयन में राज्यों की भूमिका अहम होती है। राजनीतिक संपर्क रखने वाले किसी कारखाना मालिक को प्रदूषण मानकों का उल्लंघन करने पर जुर्माना भरने के लिए तभी मजबूर किया जा सकता है जब राज्य सरकार ऐसा करना चाहे, भले ही भारत में इस तरह का कार्यक्रम लागू हो या नहीं।

लेकिन रिवर चीफ कार्यक्रम से जुड़े व्यापक सबक तो मौजूं हैं। प्रदूषण फैलाने वाली इकाइयों पर जुर्माना लगाने की राजनीतिक इच्छाशक्ति सुनिश्चित करने का सबसे अच्छा तरीका यही है कि स्थानीय समुदायों को इसका जिम्मा दिया जाए और उन्हें पर्यावरण प्रबंधन का प्रभारी बना दिया जाए। लंबे समय से भारत की पर्यावरण नीति टॉप-डाउन परिप्रेक्ष्य से संचालित होती रही है लेकिन उसके नतीजे मिश्रित ही रहे हैं। इसकी जगह बॉटम-अप परिप्रेक्ष्य अपनाने की जरूरत है जिसमें जरूरी सुधारों की पहल सर्वाधिक प्रभावित लोग ही करें। चीन में लागू हुआ रिवर चीफ कार्यक्रम इसी नजरिये की उपज है।

(लेखक ढांचागत सलाहकार फर्म फीडबैक इन्फ्रा के चेयरमैन हैं)

कम हो रहा है ऋणशोधन अक्षमता एवं दिवालिया संहिता का प्रभाव?

इस बात को लेकर चिंता बढ़ रही है कि ऋणशोधन अक्षमता एवं दिवालिया संहिता (आईबीसी) कॉर्पोरेट जगत के ऋण की समस्या को सुलझाने में उल्लिखित 270 दिन से कहीं अधिक समय ले रही है। ऐसे में आशंका यह है कि क्या आईबीसी का प्रावधान भी जल्दी ही उतना ही निष्प्रभावी हो जाएगा जितना कि बैंकों एवं अन्य वित्तीय संस्थानों के समक्ष बकाया ऋण की वसूली अधिनियम 1993, वित्तीय परिसंपत्तियों का प्रतिभूतिकरण एवं पुनर्गठन एवं प्रतिभूति ब्याज प्रवर्तन अधिनियम 2002, सिक इंडस्ट्रियल कंपनीज (स्पेशल प्रॉविजंस) अधिनियम 1985 और कंपनी अधिनियम के कई प्रावधान हो गए।

तीन शोधकर्ताओं सुरभि भाटिया, मनीष सिंह और भार्गवी जवेरी का एक हालिया अध्ययन आईबीसी के निष्प्रभावी होने की इस बहस को एक नया आयाम प्रदान करती है। अध्ययन के मुताबिक आईबीसी ने किसी मामले के निस्तारण के लिए 180 दिन की जो पहली समय सीमा तय की है उसमें मामला निपटने की संभावना बमुश्किल 5 फीसदी है। 270 दिन की दूसरी समय सीमा में यह प्रदर्शन काफी सुधरता है और मामला निपटने की संभावना 10 से 30 फीसदी के बीच हो जाती है। 360 दिन की समय सीमा में मामले का निस्तारण होने की संभावना 30 से 70 फीसदी हो जाती है।

इससे पहले के अध्ययनों से तुलना करें तो ये नतीजे यकीनन वाकई आश्वस्त करते हैं। 2018 में जोश फेलमन और अन्य लोगों के एक अध्ययन से पता चला था कि वर्ष 2017 में आरबीआई ने आईबीसी को जो 12 बड़े मामले सौंपे उनके निपटने में 500 से अधिक दिन जबकि छोटे मामलों के निस्तारण में 350 से अधिक दिन लग सकते थे। लगभग उसी समय अजय शाह और सुजन थॉमस ने एक अध्ययन किया जिसके मुताबिक किसी मामले के 270 दिन के भीतर नहीं निपटने की संभावना 80 फीसदी तक थी। जाहिर है भाटिया, सिंह और जवेरी का अध्ययन आईबीसी के प्रभाव को लेकर कहीं आशावादी तस्वीर पेश करता है। ध्यान रहे कि यह अध्ययन भी भारतीय ऋणशोधन अक्षमता एवं दिवालिया बोर्ड (आईबीबीआई) द्वारा इस वर्ष जारी किए गए आंकड़ों पर आधारित है।

दिल्ली डायरी

ए के भट्टाचार्य

यह कहना उचित होगा कि आईबीसी की कार्यप्रणाली को अब तक वह श्रेय नहीं मिला है जिसका वह पात्र है।

आईबीबीआई के 31 दिसंबर, 2018 तक के आंकड़ों के मुताबिक अब तक 1,484 मामले शामिल किए गए हैं जिनमें से 142 मामले या कहें 10 फीसदी मामले अपील या समीक्षा के बाद बंद कर दिए गए। कुल 63 मामले वापस ले लिए गए। इससे पता चलता है कि मामला आईबीसी में जाने के बाद कर्ज लेने वालों का व्यवहार बदल रहा है और वे अनुपालन कर रहे हैं।

79 मामले या कहें करीब 5 फीसदी मामले निस्तारण के बाद बंद किए गए। करीब 302 यानी 20 फीसदी मामले नकदीकरण के पश्चात समाप्त हुए। इसके अलावा नकदीकरण के बाद बंद किए गए करीब तीन चौथाई मामले ऐसी कंपनियों के हैं जो या तो निष्क्रिय थीं या फिर औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड के अधीन थीं। इस बोर्ड की स्थापना सिक इंडस्ट्रियल कंपनी (स्पेशल प्रॉविजन) अधिनियम के अधीन किया गया। यह भी बताता है कि कैसे पहले कानून शीघ्र निस्तारण कर पाने में नाकाम थे और आईबीसी ने इन मामलों का अपेक्षाकृत शीघ्र निस्तारण सुनिश्चित किया है।

करीब 61 फीसदी मामले यानी 898 मामले कॉर्पोरेट ऋणशोधन निस्तारण प्रक्रिया (सीआरआईपी) के अलग-अलग चरण में हैं। आईबीबीआई के आंकड़े बताते हैं कि करीब 30 फीसदी मामले 270 दिनों से अधिक समय से आईबीसी के साथ पंजीकृत हैं। वहीं सीआरआईपी के तहत दर्ज 18 फीसदी मामले 180 दिन से 270 दिन के बीच पंजीकृत रहे हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो सीआरआईपी के विभिन्न चरणों के अधीन करीब 48 फीसदी मामले पहले ही कानून के तहत निस्तारण की समय सीमा का पहला चरण पार कर चुके हैं। यह चिंता का विषय है।

हालांकि इन आंकड़ों से कई सकारात्मक बातें भी सामने आ रही हैं। उदाहरण के लिए एक बात तो यह कि आईबीसी की प्रक्रिया के चलते 2019 में विश्व बैंक की कारोबारी सुगमता रिपोर्ट में ऋणशोधन अक्षमता एवं निस्तारण के क्षेत्र में भारत का प्रदर्शन सुधरना तय है। वर्ष 2018 में विश्व बैंक की रिपोर्ट में कहा गया कि देश में ऋण शोधन की प्रक्रिया के पूरा होने में तकरीबन 4.3 वर्ष का समय लगता है। आंकड़े बताते हैं कि इस क्षेत्र में सुधार हुआ है और 2019 के विश्व बैंक कारोबारी सुगमता सूचकांक में भारत के प्रदर्शन में उल्लेखनीय सुधार होना चाहिए।

दूसरा, आईबीसी की प्रक्रिया के चलते निवेशकों और कर्जदाताओं के मन में इस बात को लेकर एक समय सीमा तय होने लगी है कि कारोबार कब अव्यवहार्य होते हैं और कब उनको बंद किया जाना चाहिए। यह एक ऐसे देश के लिए अच्छी खबर है जहां पूंजी का संकट है और जिसे अव्यावहारिक परियोजनाओं से जल्द से जल्द निजात पाने की आवश्यकता है। आईबीसी की प्रक्रिया कर्जदारों के व्यवहार में भी बदलाव ला रही है। उनमें अनुपालन की प्रवृत्ति बढ़ रही है।

ऐसे में यह कहना उचित होगा कि आईबीसी की कार्यप्रणाली को अब तक वह श्रेय नहीं मिला है जिसका वह पात्र है। इसने न केवल इसी प्रकृति के पुराने कानूनों को पीछे छोड़ दिया है बल्कि इसमें यह क्षमता भी है कि वह निवेशकों, कर्जदारों और कर्जदाताओं के व्यवहार में परिवर्तन लाए और देश के उद्यमी जगत के लिए बेहतर परिस्थितियां तैयार करे।

कानाफूसी

भरोसे की कमी

हरियाणा में कांग्रेस पार्टी अपने आंतरिक संघर्ष से ही नहीं उबर पा रही है। पार्टी के राज्य नेतृत्व में भरोसे की भारी कमी देखने को मिल रही है। यहां तक कि प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री भूपेंद्र सिंह हुड्डा, राज्य की वरिष्ठ नेता और पूर्व केंद्रीय मंत्री कुमारी शैलजा, प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष अशोक तंवर, कुलदीप बिश्नोई एवं कई अन्य ऐसे नेता हैं जिन्हें एक दूसरे को फूटी आंख देखना भी नहीं भा रहा है। बीते दिनों इन नेताओं ने पार्टी के हरियाणा प्रभारी गुलाम नबी आजाद को मजबूर किया कि वह लोकसभा चुनाव के लिए गठित 15 सदस्यीय समन्वय समिति की सूची को वापस लें। उधर आजाद का कहना है उनकी इच्छा आंध्र प्रदेश और कर्नाटक में सफलतापूर्वक आजमाए जा चुके प्रयोग को यहां भी आजमाने की है। दरअसल सन 2000 के दशक में इन दोनों राज्यों में भी पार्टी के भीतर भितरघात की समस्या काफी बढ़ गई थी। आजाद ने कहा कि कर्नाटक में सन 1999-2000 में और अविभाजित आंध्र प्रदेश में 2003-04 में उन्होंने एक बस किराये पर लेकर सभी असंतुष्ट कांग्रेस नेताओं को एक साथ पूरे राज्य का दौरा कराया था। उन्होंने कहा कि ये सारे नेता एक साथ भोजन करते थे, एक मंच से जनता को संबोधित करते थे और एक साथ समय बिताते थे। इससे उनमें आपसी विश्वास पैदा होता था। उन्होंने कहा कि हरियाणा में भी ऐसा ही कुछ करने की जरूरत है।

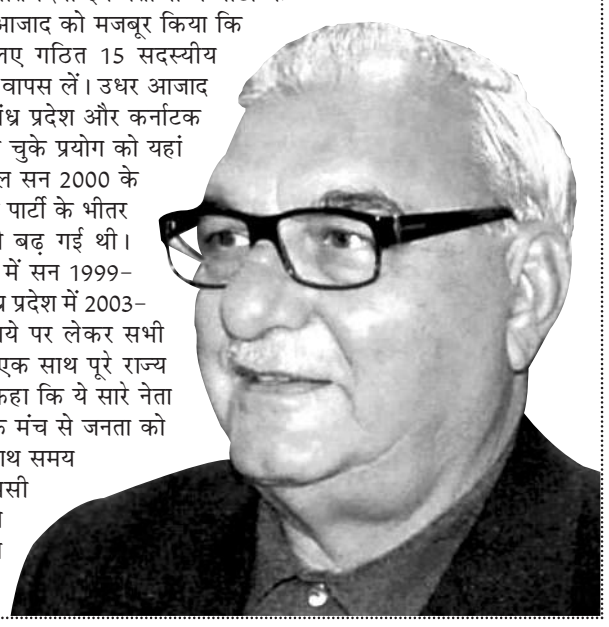

आपका पक्ष

पशुवन पार्क बनाने की जरूरत

सोनपुर मेले के बारे में हम बचपन से सुनते आ रहे हैं। यहां का विशाल पशु मेला किसानों, मवेशी पालकों, दूध व्यवसायियों आदि के लिए सालाना जश्न और सभी के लिए वरदान स्वरूप होता है। सोनपुर पशु मेले में दूर-दूर से लोग अपने मवेशी बेचने आते हैं तथा इनके खरीदार भी दूर-दूर से आते हैं। अब इस तरह के मेले को हर प्रदेश में अपनाने की जरूरत है। इसके अलावा राज्यों में उच्चस्तरीय चारागाह विकसित करने की जरूरत है जहां मवेशियों को उचित चारा मिल सके। दूध उत्पादन में भारत अन्य देशों से पीछे नहीं है, लेकिन दूध की गुणवत्ता और दुधारू मवेशियों की स्थिति संतोषजनक नहीं दिखती है। लिहाजा राज्य सरकारों को भूमि आवंटन करके इस क्षेत्र के विकास पर भी समुचित ध्यान देने की जरूरत है। केंद्र सरकार की किसान आय योजना को विशेषज्ञों ने मददगार होने के बजाय चुनावी शिगूफा बताया है। लेकिन पशुवन

पार्क में सहभागिता के भाव से राज्य सरकारें अगर निर्धन, जरूरतमंद, कम भूमि वाले किसानों की मदद करे तो केंद्र सरकार को आय दोगुनी करने की योजना का उद्देश्य हासिल करने में अधिक आसानी हो सकती है। अर्थात राज्य से प्राप्त अनुदान से वे पशुओं की बेहतर देखभाल कर सकते हैं।

हिम्मत जोशी, नागपुर

राज्यों को उच्चस्तरीय चारागाह विकसित करने की जरूरत है जिससे पशुधन बढ़ सके

ई-वाहन को प्रोत्साहन जरूरी

केंद्र सरकार ई-वाहन को पटरी पर लाने के लिए हरसंभव प्रयास कर रही है। सरकार इसमें काफी छूट भी दे रही है। इसके बावजूद कंपनियों के अनुसार ई-वाहन महंगे हो जाएंगे। ई-वाहन से प्रदूषण नहीं होता है तथा इसे चार्ज करने के लिए जगह-जगह चार्जिंग स्टेशन स्थापित किए जाएंगे। देश में जगह-जगह पर चार्जिंग स्टेशन स्थापित किए जाने चाहिए जिससे इसे चार्ज करने में कोई परेशानी न हो। ई-वाहनों की गति तेज होनी चाहिए जिससे सफर को कम समय में पूरा किया जा सके। दूसरी ओर पेट्रोल और डीजल काफी महंगे होते जा रहे हैं। इससे प्रदूषण भी काफी बढ़ रहा है।

राकेश जैन, सतना

चुनावी नहीं है सरकार की घोषणाएं

मोदी सरकार का कार्यकाल पूरा होने को है। ऐसे में सरकार के कामकाज की समीक्षा करने का माकूल अवसर आ गया है। हाल के दिनों में मोदी सरकार ने कई नवीन योजनाओं की घोषणा की है जिसे लोकलुभावन कहा जा रहा है। इसमें दो हेक्टेयर से कम जमीन वाले किसानों के बैंक खाते में सालाना 6,000 रुपये देने वाली किसान सम्मान निधि योजना, आर्थिक तौर पर पिछड़े सवर्णों को 10 फीसदी आरक्षण देने की घोषणा और असंगठित क्षेत्र के मजदूरों के लिए पेंशन योजना की घोषणा भी शामिल है। अब तक पीएम किसान योजना के तहत 2.6 करोड़ से अधिक किसानों के खातों में 2,000 रुपये की पहली किस्त जमा कराई जा चुकी है। केंद्र में मोदी सरकार जब से सत्ता में आई है तभी से घोषणाएं कर रही है और उन्हें जमीनी स्तर पर लागू भी कर रही है। इसके अच्छे और बुरे दोनों ही परिणाम सामने आए हैं, ऐसे में यह नहीं कहा जा सकता कि ऐसी घोषणाएं महज चुनावी हैं।

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।